मुख्य बिंदु

प्रश्न :
तुम बसे नहीं इनमें आकर,
ये गान बहुत रोए।
कब तक बरसेगी ज्योति बार कर मुझको?
निकलेगा रथ किस रोज पार कर मुझको?
किस रोज लिए प्रज्वलित बाण आओगे?
खींचते हृदय पर रेख निकल जाओगे?
किस रोज तुम्हारी आग सीस पर लूंगा?
बाणों के आगे प्राण खोल धर दूंगा?
यह सोच विरह में अकुला कर,
ये गान बहुत रोए।
तुम बसे नहीं इनमें आकर,
ये गान बहुत रोए।

शिवानंद भारती! परमात्मा तो प्रतिपल आ रहा है। आने की बात भी कहनी ठीक नहीं। परमात्मा आया ही हुआ है। परमात्मा भविष्य नहीं है। परमात्मा वर्तमान है। हवा का झोंका आए, तो वही आता है। और सूरज की किरण आए, तो वही आता है। और पक्षियों के गीत हों, तो वही गाता है। उसके अतिरिक्त तो यहां कुछ है ही नहीं।

इसलिए हमारी प्रार्थनाएं उसे बुलाने की व्यर्थ चली जाती हैं।

वह आया हुआ है और हम बुलाते हैं। वह द्वार पर खड़ा है और हम दूर तलाशते हैं। वह निकट से भी निकट है और हमारी आंख तारों में उलझी हैं। मनुष्य चूकता है, इसलिए नहीं कि परमात्मा दूर है, इसलिए नहीं कि परमात्मा छिपा है, बल्कि इसलिए कि परमात्मा इतना प्रकट है, इतना निकट है, इतना उघड़ा है कि हम उसे पहचान नहीं पाते। जैसे मछली सागर की सागर को न पहचान पाए। वहीं जन्मी, वहीं बड़ी हुई, वहीं जीयी, वहीं खेली-कूदी, जीवन का सारा जाल रचाया—सागर तो सदा था। मछली को सागर की याद तभी आती है जब मछुवा उसे पकड़ लेता है और फेंक देता है रेत पर। सागर से टूटती है, तो सागर की याद आती है।

लेकिन मनुष्य तो परमात्मा से टूट ही नहीं सकता। ऐसा कोई तट नहीं है, जहां तुम्हें फेंका जा सके। क्योंकि जहां भी है, जो भी है, परमात्मा ही है। परमात्मा से भिन्न होने का उपाय नहीं है। यही सबसे बड़ी अड़चन है।

काश, हम उससे भिन्न हो सकते, तो क्षण में हम उससे जुड़ने के लिए तैयार हो जाते। क्योंकि भिन्न होते ही तड़फते। मछली की तरह तड़फते। हम अभिन्न हैं। हम हैं ही नहीं, वही है। हम उसकी ही श्वासें हैं, हम उसकी ही धड़कन हैं, हम उसकी ही लहरें हैं।

इसलिए प्रार्थना न करो कि परमात्मा कब आएगा। कुछ दूसरी तरफ से कोशिश करनी होगी। परमात्मा आया हुआ है, हमने आंखें बंद कर रखी हैं। शिवानंद, आंखें खोलो! परमात्मा आया हुआ है, हम पीठ किए खड़े हैं।

शिवानंद, जिस तरफ पीठ किए हो, उस तरफ मुंह करो! परमात्मा आया हुआ है, उसने अपनी वीणा छेड़ी हुई है—सदा से छेड़ी हुई है; उसका संगीत सनातन है। शिवानंद, अपने कान खोलो! सुनो! शांत हो, मौन हो, शून्य हो। और तब तुम्हें यह कहने की जरूरत न रह जाएगी—कि कब आएगा परमात्मा? कब उसका रथ आएगा? कब उसका बाण मेरे प्राणों को छेद कर निकल जाएगा?

प्रतिपल बाण साधे खड़ा है। मगर तुम हो ही नहीं! तुम ऐसे भागे हो, तुम ऐसे चंचल हो, कि लक्ष्य-भेद किया नहीं जा सकता। लक्ष्य तो थिर हो, तो तीर बेध सकता है। तुम थिर ही नहीं हो। तुम तो प्रतिपल बदले जा रहे हो। तुम तो पानी की धार हो। एक क्षण को भी थिर होकर बैठ जाओ, और उसका तीर तुम्हारे हृदय को पार करके निकल जाएगा।

और ऐसा मैं किसी सिद्धांत के कारण नहीं कहता हूं। सिद्धांतों में मुझे कोई रस नहीं है। ऐसा मैं अपने अनुभव से कहता हूं। तुम्हारे ही जैसे बहुत दिन तक मैंने भी प्रार्थना की है। और सब प्रार्थनाएं व्यर्थ गईं। क्योंकि प्रार्थना तो कर रहा था परमात्मा से, और पीठ भी किए था उसकी तरफ। सूर्य-नमस्कार भी कर रहा था, और सूर्य की तरफ आंखें बंद भी किए था।

कैसे होगी प्रार्थना पूरी? फिर रोओगे न तो और क्या करोगे? तुम्हारे गीत बस तुम्हारे आंसुओं में ही प्रकट होंगे। तुम्हारा सारा प्राण एक उदासी, एक गहन निराशा, एक हताशा से भर जाएगा। तुम्हारे जीवन की पूरी कथा विषादपूर्ण हो जाएगी। तुम्हारी कथा एक व्यथा हो जाएगी। अनुभव से कहता हूं। जो तुम कर रहे हो, वही मैंने किया है।

लेकिन जब बार-बार प्रार्थना हारती गई, और बार-बार अर्घ्य चढ़ाया और उसके चरणों तक न पहुंचा, और बार-बार अर्चना की और शून्य में खो गई, तो एक बात स्मरण में आनी शुरू हुई : कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं उसकी तरफ पीठ किए हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं इतना भागा-भागा हूं कि उसका बाण अगर आए भी तो मुझे बेध न पाएगा। मुझे थिर होना होगा। थिरता ही ध्यान है। और मुझे शांत होना होगा। शांत होना ही उसकी तरफ उन्मुख होना है। और मुझे शून्य होना होगा। क्योंकि शून्य के अतिरिक्त न कोई प्रार्थना है, न कोई पूजा है, न कोई अर्चना है।

जो मेरा अनुभव मैं कहता,
अनुभव वह केवल मेरा है
ऐसी बात नहीं है!

जीवन के सागर से
अनुभव के बादल
उठते रहते हैं,
छा जाते निस्सीम गगन में,
जीवन-रस बरसा देते हैं
गिरि-शिखरों पर
चट्टानों पर
खेतों में, खलिहानों में
मरु खंडों पर
नदियों-नालों में
अनुभव के बादल अनगिन हैं
भूरे पीत-गुलाबी बादल
श्वेत-श्याम रतनारे बादल
नारंगी कजरारे बादल
हंसते बादल
रोते बादल
अट्टहास भी करते बादल
भोले-भाले शिशु से बादल
दानव से नख वाले बादल
इंद्रधनुष इनमें खिलते हैं
वज्र कभी इनसे गिरते हैं!
अनुभव के बादल अनगिन पर
मात्र एक जीवन का सागर
जिसकी गहराई को कोई
अब तक नाप नहीं पाया है,
देश-काल भी जिसकी सीमा
अब तक जान नहीं पाए हैं,
वह अगाध है,
वह असीम है,
जिसको कहते क्षितिज

खिलाओ फूल चेतना के

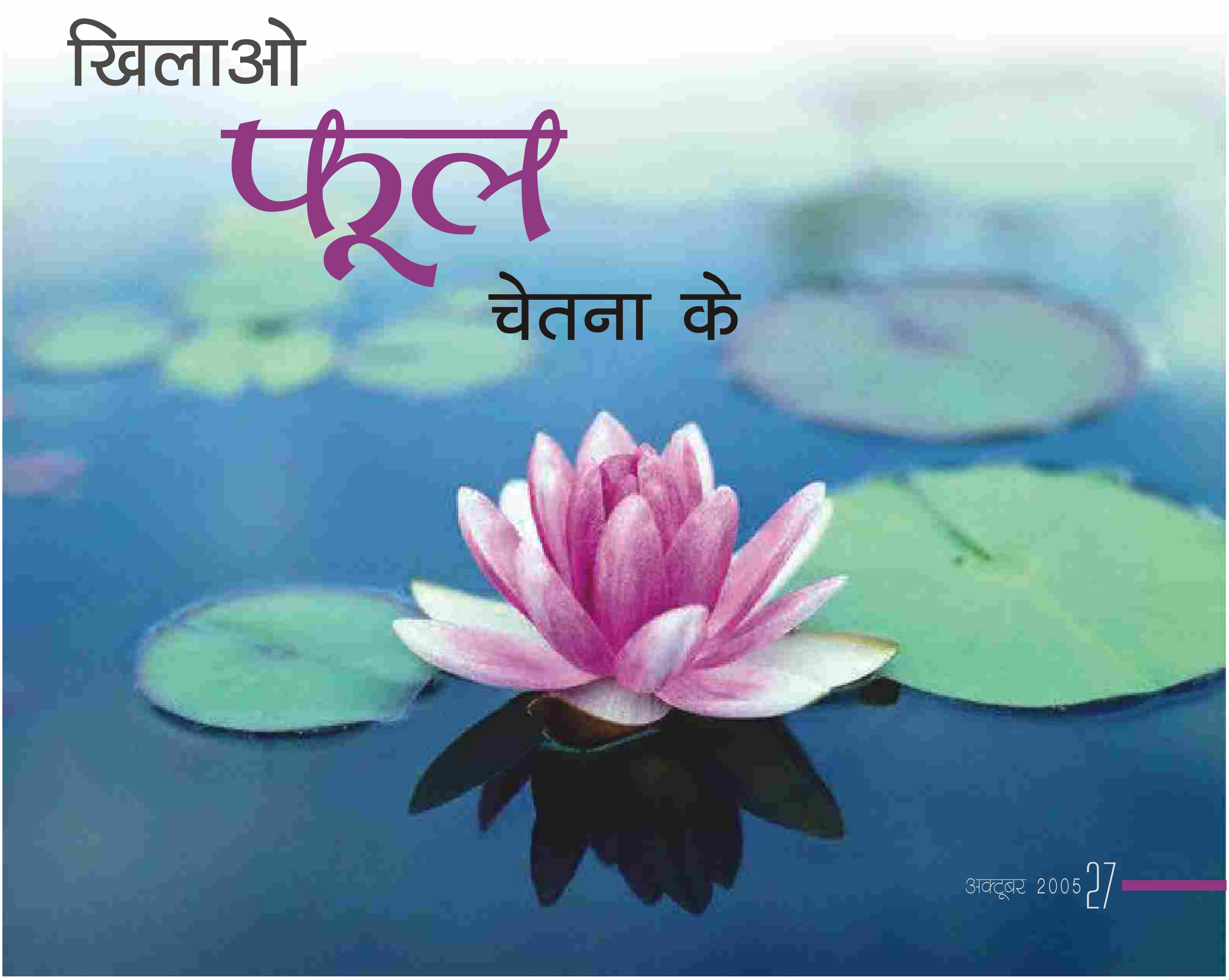

हमारे ही वीक्षण की
वह सीमा है!
उसका कोई क्षितिज नहीं है!
अनुभव के बादल अनगिन पर
सब उठते जीवन-सागर से
इसीलिए तो
जो मेरा अनुभव, मैं कहता
अनुभव वह केवल मेरा है
ऐसी बात नहीं है।

जो मैं कह रहा हूं, मेरा अनुभव है! लेकिन मेरा ही है, ऐसी बात नहीं है। जो भी जागे, सबका वही अनुभव है। जिन्होंने भी आंख खोलीं, सबका वही अनुभव है। अनुभवी एकमत हैं। सबै सयाने एकमत! और विवाद अगर कहीं है तो पंडितों में है। जिनकी प्रज्ञा जग गई है, उनमें कोई विवाद नहीं है। सिद्धांतों और शास्त्रों का ऊहापोह है तो शास्त्रियों में है। वे शास्त्रों का भी शस्त्र की तरह उपयोग करते हैं। लड़ने के नये-नये बहाने हैं। अहंकार की प्रतिष्ठा के नये-नये उपाय। लेकिन बुद्धों में, सिद्धों में कोई विवाद नहीं है। विवाद असंभव है। हो ही नहीं सकता। अनुभव तो एक है।

और अनुभव जिसका है, वह एक ही सागर है। सारे बादल एक ही सागर से उठते हैं। फिर वे भूरे हों कि पीले हों कि सतरंगे हों, इससे अंतर नहीं पड़ता। सारे बादल एक ही सागर से उठते हैं। लेकिन वे बादल चट्टानों पर भी बरसते हैं, पहाड़ों पर भी बरसते हैं, खेत-खलिहानों में भी बरसते हैं—और तब अंतर पड़ जाता है। पत्थर पर वे ही बादल बरसते हैं, मगर दूब नहीं ऊगती। चट्टानों पर वे ही बादल बरसते हैं, मगर चट्टानें खाली की खाली रह जाती हैं। आर्द्र नहीं हो पातीं। गीली नहीं हो पातीं। रससिक्त नहीं हो पातीं। वे ही बादल झीलों में भर जाएंगे। झीलें चूंकि खाली थीं, शून्य थीं, इसलिए वे ही बादल झीलों पर जब बरसेंगे, तो झीलें भर जाएंगी।

और पहाड़ चूंकि पहले से ही भरे हैं, इसलिए वे ही बादल पहाड़ों पर भी बरसेंगे लेकिन पहाड़ खाली के खाली रह जाएंगे।

अहंकार है तो तुम खाली के खाली रह जाओगे। अहंकार को जाने दो, झील की नाईं हो जाओ, बादल तो बरस ही रहे हैं, भरने में देर न लगेगी।

और इतना स्मरण रखना : वह आ भी जाएगा, उसका रथ तुम्हारे प्राणों को पार करके निकल भी जाएगा, उसका बाण तुम्हें बेध भी देगा, तुम उसे अनुभव भी कर लोगे, फिर भी तुम उसे जान न पाओगे। उसे जानने का कोई भी उपाय नहीं है। उसे जीया जा सकता, जाना नहीं जा सकता।

जिसकी गहराई को कोई
अब तक नाप नहीं पाया है,
देश-काल भी जिसकी सीमा
अब तक जान नहीं पाए हैं,
वह अगाध है,
वह असीम है,
जिसको कहते क्षितिज
हमारे ही वीक्षण की
वह सीमा है।
उसका कोई क्षितिज नहीं है!

उसकी कोई सीमा नहीं है—न समय में, न क्षेत्र में। इसलिए हम उसे जान-जान कर भी जान नहीं पाते। जितना जानते हैं, उतना ही रहस्यपूर्ण होता चला जाता है।

तुम्हारी प्रार्थना शुभ है। पर प्रार्थना के अनुकूल तुम्हें स्वयं भी होना होगा। तुम्हारी पूजा शुभ है। लेकिन जो दीये तुमने जलाए हैं पूजा के थाल में, वे तुम्हारी आत्मा के दीये नहीं हैं। तुम जो फूल चढ़ाने ले आए हो परमात्मा के चरणों में, वे तुम्हारी आत्मा के फूल नहीं हैं, वे तुम्हारी चेतना के फूल नहीं हैं। तोड़ लाए हो किन्हीं वृक्षों से—गुलाब है और चंपा है और चमेली है—और उनके फूल चढ़ा दिए हैं तुमने पत्थर की एक मूर्ति पर।

परमात्मा भविष्य नहीं है। परमात्मा वर्तमान है। हवा का झोंका आए, तो वही आता है। और सूरज की किरण आए, तो वही आता है। और पक्षियों के गीत हों, तो वही गाता है। उसके अतिरिक्त तो यहां कुछ है ही नहीं

सब झूठा है। पत्थर की मूर्ति झूठी—आदमी की बनाई हुई। फूल उधार—किन्हीं वृक्षों से ले आए। ज्योति भी अपनी नहीं। प्रार्थना-पूजा भी बासी। कोई गायत्री दोहरा रहा है, कोई कुरान की आयत पढ़ रहा है, कोई नमोकार-मंत्र का उच्चारण कर रहा है। प्रार्थना भी अपनी नहीं, भाव भी अपने नहीं, इतने उधार-परमात्मा पत्थर का, फूल वृक्षों के, पूजा उधार, प्रार्थना बासी, दीया भी अपने चैतन्य का नहीं—फिर कैसे होगा?

कुछ तो प्रामाणिक लाओ!

आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे?

तेरे तल में अंधियारा है,
फिर भी तू अंधियारा हरता।
सांस-सांस पर धूम्र रूप में
तू प्रतिपल निज व्यथा उगलता।
देख रही हूं तेरी लौ में,
तेरा आकुल हृदय मचलता।
पर तम को हरने में ही तो,
है यह तेरा जीवन जलता।
जगती को जीवन देकर भी,
मैं प्रकाश कर पाऊं कैसे?
आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे?
आता है परवाना उड़ कर,
लेकिन वह भी जल ही जाता।
तेरे प्राणों की ज्वाला में,
पागल अपना तन झुलसाता।
उसका यह बलिदान न तेरी,
गति में कुछ बाधा पहुंचाता।
धन्य-धन्य है जीवन तेरा,
अविरत गति से जलता जाता।
क्षणभंगुर यह जीवन-दीपक,
इसको सफल बनाऊं कैसे?
आज बता दे दीप मुझे प्रिय,
मैं तुझ सी बन जाऊं कैसे?

दीये बनो! शिवानंद, दीये बनो! भीतर का दीया जलाओ। उसे ही मैं ध्यान कह रहा हूं। भीतर का दीया जलाओ। उसे ही मैं प्रेम कह रहा हूं। फूल खिलाओ चेतना के, करुणा के, आनंद के, अहोभाव के, कृतज्ञता के। इन फूलों को चढ़ाओ। और पत्थर की मूर्तियों को तलाश करने जाने की जरूरत नहीं है। वह सब तरफ मौजूद है। सब दिशाओं में भरा है। जिस दिशा में झुकोगे, उसी के चरण हैं। जिस चरण में झुकोगे, उसी के चरण हैं। और प्रार्थना अपनी उठने दो! कम से कम प्रार्थना तो निज की हो। तुतलाती ही हो, तो भी चलेगा। तुतलाती प्रार्थनाएं भी पहुंच जाएगी और गायत्री के शुद्धतम मंत्र भी नहीं पहुंचेंगे। यह प्रश्न मंत्रों का नहीं है, ध्वनियों का नहीं है, मात्राओं का नहीं है, व्याकरण, भाषा का नहीं है, यह प्रश्न तो प्रीति का है।

छोटे से बच्चे को देखा है जब पहली दफे तुतलाता है? तो मां कितनी आनंदित हो जाती है! यही बच्चा एक दिन विश्वविद्यालय से लौटेगा पीएच.डी. लेकर, बड़ी सुंदर भाषा बोलेगा, अलंकृत, मगर मां फिर वैसी प्रसन्न कभी नहीं होगी! इसकी पीएच.डी. की उपाधि भी अब कुछ अर्थ न रखेगी। वह जो पहली बार यह तुतलाया था—कुछ बोला नहीं था, ऐसे ही आवाज की थी...मम्-मम्... लेकिन मां आनंदित हो गई थी। उस पहली आवाज में निसर्ग था, स्वभाव था। अब शिक्षा है, संस्कार है—मगर सब उधार है। वह पहली आवाज इसके प्राणों में उठी थी।

ऐसी ही आवाज परमात्मा तक पहुंचती है, खयाल रखना!

अपनी कहो। और कुछ कहने को न बने तो रोओ! आंसू तो अपने हैं! आंसुओं के साथ कम से कम एक अच्छी बात है कि आंसुओं की कोई गायत्री नहीं, कोई कुरान नहीं। तुम किसी और के आंसू नहीं गिरा सकते। अपने ही आंसू। वे पहुंच जाएंगे। वे उसके चरणों में पखार देंगे।

और इतना फिर दोहरा दूं : वह आया हुआ है, तुम भागे हुए हो। सवाल उसके आने का नहीं है, सवाल तुम्हारे खड़े हो जाने का, ठहर जाने का है।

– ओशो
प्रेम पंथ ऐसो कठिन
आठवां प्रवचन, पहला प्रश्न
(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)